समान्तर रेखाएं
अलका प्रमोद

चलते–चलते

कहानीकार का कथ्य उसकी कहानियाँ होती हैं। कहानियों के कथानक, पात्र, उनके मनोभाव, कहानीकार की समाज के प्रति चिन्ता उसके दृष्टिकोण और विचारों के अपरोक्ष प्रतिबिम्ब होते हैं। भले ही कहानियाँ कल्पना की संतान होती हैं, न कि किसी व्यक्ति विशेष के जीवन का लेखा–जोखा, पर उन कल्पनाओं में भी समाज का प्रतिबिम्ब तो होता ही है।

सच तो यह है कि लेखक भले ही स्वांतः सुखाय लिखे पर वह समाज के प्रति अपने दायित्व को नकार नहीं सकता। उसकी रचना जिन पाठकों तक पहुंचती है उन पाठकों के मस्तिष्क पर अपने हस्ताक्षर अंकित करती है और अपरोक्ष रूप से ही सही, कहीं न कहीं उसके विचारों और मनोभावों को उद्वेलित करती है तो क्या ऐसे में लेखक के कंधों पर यह गुरुतर भार नहीं आ जाता कि वह कहानी (मात्र कहानी ही मैं इसलिये लिख रही हूं कि बात यहां कहानी के परिप्रेक्ष्य में हो रही है।) लिखते समय इस बात से असावधान न रहे कि कहानी में मनोरंजन और यथार्थ के रंग तो हों पर वह अपने उद्देश्य से विचलित न हो और समाज के हित को सर्वोपरि रखे। माना कहानी उपदेश नहीं है पर वह मात्र फंतासी या समाज का यथार्थ ही नहीं है। कम से कम मेरा तो यही मानना है कि कहानी के द्वारा उन समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर सकूं जो मेरे मन को मथ रहे हैं। "सच क्या था" और "धूप का टुकड़ा" के बाद यह तीसरा कहानी संग्रह निश्चय ही मेरे सुधी पाठकों के स्नेह, प्रोत्साहन और उनके द्वारा मुझे स्वीकारे जाने का परिणाम है अतः मैं अपने पाठकों की हृदय से आभारी हूं।

सन् 2010 में महिला दिवस को स्थापित हुये 100 वर्ष व्यतीत हो

चुके हैं, यही कारण है कि महिला दिवस की शताब्दी पर मैं यह कहानी संग्रह आदिकाल से आज तक की उन सभी संघर्षशील नारियों को समर्पित करना चाहती हूं जिन्होंने अनवरत नारी हित के लिये आवाज उठायी, संघर्ष किया, और उनके उत्थान में अमूल्य योगदान दिया है। इसीलिये मैंने नारी मनोविज्ञान पर आधारित कहानी के शीर्षक को ही इस संग्रह का शीर्षक चुना।

ऐसा नहीं कि इस संग्रह की चौदह कहानियां नारी विमर्श का ही प्रतिनिधित्व करती हों पर हां, अधिकांश के विषय उनके आस–पास ही विचर रहे हैं। संग्रह की अधिकतर कहानियां विभिन्न पत्रिकाओं एवं वेब पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं उदाहरणार्थ "समांतर रेखाएं" दिल्ली प्रेस में "मेघा का पुरुस्कार" जागरण सखी में, "मुखौटा" वंशिका में तो "एक और मानवी" सृजनगाथा में आदि।

अपनी कहानियों के विषय में कुछ कहना उनको बैसाखी लगाने जैसा लगता है। कहानियां तो जो कहना है स्वयं ही कहती हैं अतः मैं उन्हें आपको ही समर्पित करती हूं। सदा की भांति लेखन के क्षेत्र में यहां तक पहुंचने का श्रेय मैं, पग–पग पर प्रोत्साहन और सहयोग देने वाले माता–पिता, श्री कृष्णेश्वर डींगर, श्रीमती संतोष डींगर, गुरुजनों और जीवन साथी श्री प्रमोद कुमार पाण्डेय को देना चाहूंगी।

पाठकों के प्रोत्साहन, स्नेह और शुभकामनाओं की आकांक्षा में आभार सहित–

– अलका प्रमोद

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	समांतर रेखाएं	1–10
2.	नेता जी की जय	11–17
3.	ऐसी थी वो	18–26
4.	खौफ़	27–36
5.	इतनी देर में	37–45
6.	पापा मुस्करा उठे	46–52
7.	शापित बचपन	53–62
8.	एक और मानवी	63–72
9.	अपना घर	73–79
10.	अनाम आशंका	80–89
11.	वह पल	90–95
12.	मुखौटा	96–102
13.	रिश्तों से परे	103–109
14.	मेधा का पुरस्कार	110–118

समान्तर रेखाएं

जब से फोन पर बात हुई, राशि कमरे में इधर से उधर चक्कर काट रही है। उसे समझ नहीं आ रहा है कि किस प्रकार ईवा को समझाए। आज प्रथम बार ईवा जिस प्रकार हठ पर अंगद के पांव के समान अड़ी है, उसे मानना राशि के लिये सम्भव नहीं हो पा रहा है। उसने सदा ईवा की इच्छा पूरी की है उसे पूर्ण स्वतंत्रता दी है और उसे समझने के उद्देश्य से अपने संस्कारों की परिधि को पार करके एक पग आगे चलने का प्रयास किया है। पर आज वह ईवा की लय से लय मिलाकर चलने में स्वयं को असमर्थ पा रही है और यही बेसुरा राग उसके मन में शोर उत्पन्न करके उसे व्यग्र कर रहा है। वह बड़बड़ा उठी "इस लड़की का दिमाग खराब हो गया है न घर की चिन्ता है न समाज की, यह भी नहीं सोचती है कि उसके कारण हम लोगों को क्या–क्या सुनना पड़ेगा" अचानक अपने ही कहे शब्दों ने उसके मन पर एक चोट की और उसके पांव ठिठक गए। स्मृति के पिटारे में बन्द अम्मा का चेहरा उसके मानस पटल पर उभर आया। उन्होंने भी बड़बड़ाते हुए ऐसा ही कुछ कहा था जब उसने विजातीय अनुज से अपने विवाह की आकांक्षा व्यक्त की थी। अम्मा के विचारों से वह कभी भी सहमत नहीं हो पायी थी। उसे अम्मा सदा पुरातन पंथी और संकीर्ण विचारों की लगी थीं। अम्मा के अनुसार तो लड़की के लिये समाज में बस बंधन ही बंधन थे। कभी–कभी राशि का विरोध मुखर हो जाता था और तब अम्मा की दृष्टि में वह बिगड़ी और सिर चढ़ी लड़की बन जाती थी और मामला बाबू जी के न्यायालय में पहुंच जाता था। ऐसी विकट स्थिति में बाबू जी प्रत्यक्षतः तो उसे डांटते पर पीठ पीछे उसे समझाते "बेटी तुम्हारी और तुम्हारी अम्मा की सोच में एक पीढ़ी का अन्तर है तुम अपने समय के अनुसार सोचती हो और अम्मा अपने समय के